मंहगाई का झूठ जो सच बन गया

सम्पूर्ण देश में मंहगाई से सभी त्रस्त हैं। चाहे कोई किसान हो या मजदूर वह मंहगाई का रोना अवश्य रो रहा है। शहर का आदमी तो मंहगाई से परेशान है ही, गाँव वाला भी मंहगाई से त्रस्त ही है। बड़े–बड़े पूँजीपति भी मंहगाई से अपना घरेलू बजट गड़बड़ाने की चिन्ता कर रहे हैं। महिलाएँ भी इस चिन्ता प्रदर्शन में पीछे नहीं है। वे भी अपना दुख व्यक्त अवश्य करती हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि भारत के प्रत्येक व्यक्ति ने यह स्वीकार कर लिया है कि–

(1) भारत में मंहगाई लगातार बढ़ रही है। पिछले दो महिनों से मंहगाई बहुत ज्यादा बढ़ी है तथा उसकी वृद्धि अब तक जारी है।

(2) भारत के सामान्य जनजीवन पर मंहगाई का बुरा असर पड़ता भी है और पड़ा भी है।

(3) जमाखोरी से मंहगाई बढ़ती है। महंगाई बढ़ती है। मंहगाई में व्यापारियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

मैंने मंहगाई पर बहुत विचार किया तो मैं न तो मंहगाई का अर्थ समझ सका न ही उसका प्रभाव। मंहगाइ और मुद्रा स्फीति दो अलग–अलग शब्द है। जब रूपये का मूल्य कम होता है तो हम उसे मुद्रा स्फीति कहते हैं मंहगाई नहीं। मैंने कई अच्छे –अच्छे अर्थशास्त्रियों से पूछा कि स्वतंत्रता के बाद भारत में मंहगाई कितने गुना बढ़ी है तो वे इस प्रश्न का उत्तर नहीं देते। सिर्फ सड़क छाप उत्तर दे देते हैं कि उस समय एक रूपये का आधा किलो घी मिलता था और आज एक सौ रूपये का आधा किलो मिलता है जिसका गणितीय अर्थ हुआ कि स्वतंत्रता के बाद घी एक सौ गुना महंगा हो गया। प्रश्न उठाता है कि क्या यह सच है? उस समय जिस एक रूपये का आधा किलो घी मिलता था उस रूपये का तो अब एक किलो घी मिलता है बशर्ते रूपया वही हो। बहुत प्राचीन समय में रूपया सोने का था। बाद में चांदी का और उसके बाद रांगा होते–होते कागज का बन गया। चांदी के रूपये के बराबर घी आज के रूपये में न मिले तो घी मंहगा हुआ या रूपया का अवमूल्यन हुआ? विचारणीय प्रश्न यह है कि सम्पूर्ण भारत में यह झूठ क्यों प्रचारित हो रहा है कि घी मंहगा हो गया। सामान्य सा सिद्धान्त है कि किसी भी प्रकार की तुलना में आधार का स्थिर रहना अनिवार्य शर्त होती है। हम यदि रूपया को आधार मानते हैं और वही चलायमान है तो इसमें घी बेचारे का क्या दोष है? सच यह है कि स्वतंत्रता के बाद भारत में कोई मंहगाई नहीं बढ़ी है बल्कि हम आज तक मंहगाई की कोई व्याख्या या परिभाषा समाज के समक्ष प्रस्तुत किय बिना ही मुद्रा स्फीति के सच को मंहगाई के झूठ के नाम से प्रचारित करके सारे भारत को यह समझाने में सफल हो गये कि मंहगाई बढ़ी है और हर चीज मंहगी हो गई है।

दूसरी बात यह है कि मंहगाई से आम नागरिक त्रस्त होता है। जब मंहगाई स्वयं में अस्तित्व हीन भावनात्मक प्रचार है तो उसका प्रभाव आम नागरिक पर हो कैसे सकता है और यदि होता है तो कोई अर्थशास्त्री यह क्यों नहीं बताता कि स्वतंत्रता के बाद मंहगाई का आम जनजीवन पर कितना गुना प्रभाव पड़ा। जब प्रभाव पड़ा है तो उसका आकलन भो होना आवश्यक है? यदि भारत में स्वतंत्रता के बाद पचास गुना मंहगाई बढ़ी तो इसका अर्थ हुआ कि जनजीवन पचास गुना पीछे गया। सब जानते हैं कि गरीबी रेखा के नीचे जीने वालों की स्थिति तक में सुधार हुआ है और उनकी संख्या लगातार घट रही है तो स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि या तो मंहगाई का कोइ प्रभाव जनजीवन पर पड़ने का निष्कर्ष झूठ है या मंहगाई बढ़ने की बात झूठ हैं। यदि दोनो सच होते तो गरीब और विपन्नों की संख्या में विस्तार होना चाहिये था और वह विस्तार भी मामूली नही क्योंकि जब मंहगाई पचास गुना बढ़ गई हो तब तो बहुत व्यापक प्रभाव होना चाहिये था जो नहीं है। यदि मुदा स्फीति और मंहगाई जुड़े हुए हैं तो यह सिद्ध हो चुका है कि मुद्रा स्फीति का प्रभाव सिर्फ नगद रूपया मात्र पर ही होता है, अन्य किसी पर नहीं तो यदि रूपया का मूल्य घटा तो गरीब हो या धनी, नगद रूपया विहीन तो उससे अप्रभावित ही रहेगा। मैं तो बहुत विचार करने के बाद भी नहीं समझ सका कि मंहगाई और मुद्रा स्फीति का स्वतंत्रता के बाद कितना प्रभाव सामान्य जनजीवन पर पड़ा?

विगत एक दो माह से कुछ वस्तुओं के मूल्यों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है यह सच है। इनमें दालें, डीजल,पेट्रोल,गेहूँ, चीनी और टमाटर उल्लेखनीय हैं। डीजल,पेट्रोल के मूल्य लगभग उतने ही बढ़ाये गये हैं जितने मुद्रा स्फीति के हिसाब से स्वाभाविक थे। इसका अर्थ यह है कि डीजल, पेट्रोल के मूल्यों में कोई वास्तविक वृद्धि न होकर उनका पुनर्मूल्यांकन। बे मौसम टमाटर की मूल्यवृद्धि से आम आदमी पर क्या प्रभाव पड़ा जो इस मौसम में टमाटर न पहले कभी खाता था न अब खाता है। यदि टमाटर के मूल्य आम नागरिक की पहुँच से बाहर है तो टमाटर बिक कैसे रहा है? यदि टमाटर बिक रहा है तो उसका सीधा मतलब है कि टमाटर का प्रभाव उन पर बिल्कुल नहीं है तो बे मौसम टमाटर खाना आवश्यक समझते हैं तीसरी चीज है, गेहूँ, चीनी की मूल्यवृद्धि का भी प्रभाव उन लोगों पर बिल्कुल नहीं है जिन्हें गेहूँ, चीनी, राशन, में भरपेट मिलता है। यदि उन्हें भरपेट नहीं मिलता तो उन्हें जितना गेहूँ राशन में कम पड़ता होगा वही आंशिक प्रभाव उन पर पड़ेगा यदि आप मानते हों कि राशन का गेहूँ उन तक पहुँचता ही नहीं तो पहले इस सच्चाई को स्वीकार करके इस गेहूँ या अन्य वस्तुओं की सार्वजनिक वितरण प्रणाली को समाप्त करके इस भ्रष्टाचार की जननी को बन्द करिये ओर सारी सब्सी डी का नगदीकरण कर दीजिये। दालें अवश्य ही ऐसी वस्तुएँ है जिनका प्रभाव सामान्य लोगों पर पड़ता है। दालों का निर्यात आयात प्रणाली में सुधार करके इनके मूल्य संतुलित हो सकते है। दालों के मूल्य बढ़ गये मात्र इस नाम से मंहगाई बढ़ गई और आम नागरिक की कमर टूट गई यह पुरी तरह असत्य है।

यह बात लगातार फैलाई जा रही है कि जमाखोरी से वस्तुओं के मूल्य बढ़ते हैं। पूरे भारत में दो लोग स्टाक करते हैं (1) व्यापारी, (2) सरकार। व्यापारी जो गेहूँ या दाल स्टाक करते हैं वह उसी वर्ष भाव बढ़े या न बढे बेच देते हैं। व्यापारी उत्पादन अवसर पर सस्ते मूल्य के समय माल खरीदता है आर खपत सीजन में भाव बढ़ने पर बेंच देता हैं। यह सच है कि उत्पादन पर व्यापारी के माल स्टाक करने से मूल्य वृद्धि होती हैं और खपत सीजन में उसके माल बेचने से मूल्य कम होते हैं। मैं आज तक नहीं समझ पा रहा कि यदि व्यापारी के माल स्टाक पर रोक लगा दी जाये तो उससे किसान और उपभोक्ता को क्या लाभ होगा? उत्पादन सीजन और उपभोक्ता सीजन के भावों में अन्तर जितना कम होगा उतनी ही मूल्यों में स्थिरता आयेगी। यदि उत्पादन सीजन में स्टाक नहीं होगा तो यह अन्तर बहुत बढ़ जायगा क्योंकि न तो उत्पादन सीजन में किसान को ग्राहक मिलेगा न ही खपत सीजन में उपभोक्ता को विक्रेता। भारत कोई ऐसा छोटा गाँव नहीं है जहाँ के चार व्यापारी सिन्डीकेट बनाकर मनमाना प्रभाव डाल सकें। नहीं गेहूँ कोई ऐसी चीज है जो इस तरह रोक कर रखी जा सके।

पिछले वर्षों में उत्पादन सीजन में गेहूँ चार साढ़े चार तक बिकता था जो बाद में नौ का हो जाता था। इस वर्ष उत्पादन सीजन में गेहूँ आठ रूपये किलो बिका जो बाद में बारह बिकेगा तो यह अन्तर कम उत्पादन के कारण है जो बाहर से आयात करके ही घटाया जा सकता है। मैं आश्वस्त हूँ कि गेहूँ बड़ी मात्रा में स्टाक होने के कारण तथा आयात के बाद भाव खपत सीजन में दस रूपये पर रूक जायेगे।

दूसरी स्टाक एजेन्सी सरकार है जो गेहूँ खरीदकर कई–कई वर्ष स्टाक कर देती है उनकी इस जमाखोरी का बहुत प्रभाव पड़ता है क्योंकि आवश्यक नहीं कि वह गेहूँ खपत सीजन में बाहर आ जावे। सरकार का यह क्रय–विक्रय भी भावों को स्थिर करने में सहायक होता है किन्तु सरकार की एक सीमा है। फिर सरकार को इस भाव स्थिरीकरण में भारी धन राशि खर्च होती है जो बिना खर्च किये ही व्यापारियों को छूट देकर आसानी से प्राप्त हो सकता है।

महंगाई का भारत में जो अर्थ और प्रभाव प्रचलित है वह पूरी तरह भ्रमपूर्ण है। मंहगाई का अर्थ सिर्फ यह होता है कि जब समाज के किसी वर्ग के उपयोग में आने वाली वस्तुओं का मूल्य उसकी क्रय शक्ति में हुई वृद्धि से अधिक बढ़ता है तब हम उसे मंहगाई और उसका दुष्प्रभाव कह सकते हैं। अभी गेहूँ बिक्री से किसानों की क्रयशक्ति बढ़ी है और उसके खरीदने वाली वस्तुओं के मूल्यों में मुद्रास्फीति से अधिक वृद्धि नहीं हुई है तो किसानों के लिये मंहगाई कम हुई है। दूसरी ओर अभी के सीजन में जो लोग बाजार में पांच रूपये किलो गेहूँ खरोदते थे उन्हें गेहूँ तो नौ रूपये किलो मिला किन्तु उसकी क्रय शक्ति नहीं बढ़ी उनके लिये गेहूँ मंहगा हुआ है। मंहगाई ऐसी नहीं है जिसका क्रय शक्ति से सीधा संबंध न हो। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमने मंहगाई का पभाव आंकलन करने में न तो क्रय शक्ति का तालमेल किया न ही उत्पादन और उपभोक्ता के भिन्न–भिन्न वर्ग बनाये और हमने सीधा नतीजा निकाल लिया कि मंहगाई बढ़ी है।

प्रस्तुत लेख में यह निष्कर्ष निकलता है कि मंहगाई और मुद्रास्फीति लगभग जुड़े हुए हैं, मंहगाई न होकर कुछ चीजें मंहगी और कुछ सस्ती होती हैं जिनका औसत मुद्रा स्फीति होती है। किसी वस्तु के मूल्यों में अस्वाभाविक वृद्धि के कारणों में उत्पादन की कमी का प्रभाव पैंतालीस प्रतिशत, आयात–निर्यात के गलत आकलन का पैंतालीस प्रतिशत सरकारी और व्यापारिक जमाखोरी का दस प्रतिशत ही होता ह। सरकारें सारा दोष व्यापारिक जमाखोरी पर इसलिये डालती हैं कि इससे उनकी गल्तियाँ छिप भी जाती हैं और उन्हें व्यापारियों को ब्लैक मेल करके धन बटोरने का भी अवसर मिल जाता है। यदि सरकार आयात–निर्यात नीति का ठीक–ठीक आकलन करने लगे तथा समाज को किसान और उपभोक्ता के रूप अलग–अलग नीतियाँ बनाना बन्द करके एक सीधी सादी नीति बनाना शुरू कर दे तो वस्तुओं की मूल्य वृद्धि का प्रभाव भी कम होगा और मूल्य वृद्धि भी कम होगी।

मंहगाई के विषय में असत्य इतनी जल्दी क्यों फैलता और फैलाया जाता है? मेरे विचार में अर्थनीति के मामले में भारत में विचार मंथन का अभाव हो गया है। एक बार टमाटर और दूसरी बार प्याज के नाम पर मंहगाई के मारक प्रभाव को राजनीतिज्ञ देख चुके हैं। वे पुनः उस शब्द का वैसा ही दुरूपयोग करना चाहते हैं। जब राजनेता और मिडिया कर्मी एक साथ मिलकर मंहगाई का सुनियोजित हल्ला उठाते हैं ता इस आंधी में विचार को खड़े होने की जगह ही नहीं मिल पाती है। मैंने भी बहुत हिम्मत करके इस आंधी में यह जानते हुए भी, कि भारत में इस समय यह बोलने वाला मैं ही हूँ, हिम्मत की है कि सत्य हो कहना बन्द नहीं होना चाहिये भले ही परिणाम की आशा न भी हो। यही सोचकर मैंने अपना विचार लेखबद्ध किया है। आशा है कि आप सबके विचार मंथन में और सहायक होंगे।

पत्रोत्तर

(1) आचार्य पंकज, सदस्य ज्ञानयज्ञ मण्डल, सलाहकार समिति, दिल्ली।

(1) ज्ञान तत्व एक सौ चौदह में पृष्ठ बारह पर आपने लिखा कि मैं वर्तमान आरक्षण नीति के न समर्थ में हूँ न विरोध में। आपके इस वाक्य से आपकी अस्पष्टता स्पष्ट होती है और संशयात्मा विनःश्यति के अनुसार आपकी तटस्थता अन्याय के पक्ष का खुला

समर्थन माना जाना चाहिये। दुविधा में सुविधा तो है किन्तु स्पष्ट निर्णय व्यक्ति के मूल्यांकन की कसाटी होती है। स्वतंत्र अभिव्यक्ति कभी–कभी अन्याय की ओर मुखर हो जाया करती है।

(2) ज्ञान तत्व अंक एक सौ चौदह में ही आपने ''नक्सलवाद व्यवस्था परिवर्तन या सत्ता संघर्ष लेख में लिखा कि ''अभी–अभी अमेरिकी दूतावास ने भी बस्तर क्षेत्र में बढ़ते नक्सलवाद पर नियंत्रण के लिय छत्तीसगढ़ में भारत को सहायता की इच्छा व्यक्त की है। उसकी इच्छा का छत्तीसगढ़ सरकार ने स्वागत किया और भारत के साम्यवादियो ने विरोध।

अमेरिका को कश्मीरी आतंकवाद की अपेक्षा बस्तर अधिक समस्याग्रस्त दिखा और साम्यवादियों की तो चर्चा ही व्यर्थ है। वे तो रात में गंभीर निद्रा में भी अमेरिका के विरूद्ध बड़बड़ाते रहने के लिये ख्याति प्राप्त हैं चाहे सन्दर्भ रहे या न रहे।''

देश की कांग्रेस तथा भारतीय जनता पार्टी दोनों ही इस समय अमेरिका के प्रबल समर्थक हैं। छत्तीसगढ़ में भारतीय जनता पार्टी की सरकार ह, उसकी रक्षा में अमेरिका का खड़ा होना ही हमारे पक्ष को और दृढ़ करता है। अमेरिका यदि अपने पिछलग्गुओं का समर्थन नहीं करेगा तो उपनिवेशवाद का सम्राज्य कैसे विस्तारित हो सकेगा? साम्यवाद के जन्मकाल से ही अमेरिका उसके नाश के लिये कार्यरत है, उदाहरणार्थ–क्यूबा, विएतनाम, फारमोसा (चीन) आदि। अब अमेरिका के पक्षधरों को साम्यवादियों से समर्थन की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये। इस अंतर को अच्छी प्रकार से समझना होगा कि यह दो विचार धाराआं का संघर्ष है। यह बराबर रहेगा।

कश्मीर आतंकवाद को खुला समर्थन अमेरिका का है, यह अमेरिका है, एक ही देश में दो प्रान्तों में अलग–अलग तरह का समर्थन है। अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति मि. क्लींटन भारत के दौरे पर आये थे। राजग सरकार के प्रधानमंत्री भी अटल बिहारी वाजपेयी जी ने उनका भाषण संयुक्त संसद में कराया था। भारत के दोनों सदन (राज्य सभा, लोक सभा) के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए मि. क्लिंटन ने कहा था कि '' मैंने कारगिल युद्ध समाप्त करवा दिया है पाकिस्तान को कहा कि अपनी सेनाओं को कारगिल से ले जाओ और भारत को कहा कि पाकिस्तान को जाने का रास्ता दे दो।'' हद तो तब हो गयी जब अमेरिका ने कश्मीर मसले पर भारत–पाकिस्तान के बीच मध्यस्थता करने की बात भी कह डाली थी। यह भारतीय संप्रभुता पर एक प्रहार था, जिसका विरोध साम्यवादियों को छोड़कर किसी अन्य राजनीतिक दल ने नहीं किया था अमेरिका कश्मीर मसले पर खुले–आम पाकिस्तान के साथ है।

यह चेतना कितनी प्रबल है कि अमेरिका जैसे आतंकवादी के विरूद्ध निद्रा में साम्यवादी उससे जुझते हैं इसकी चर्चा पूरी दुनिया में है। निरर्थक शब्दों का प्रयोग करके तथ्य नहीं छुपाये जा सकते हैं। ''व्यर्थ'' शब्द का प्रयोग किसी के लिये हो सकता है, क्योंकि उसका प्रयोग हमेशा सन्दर्भहीन रहता है।

(3) ज्ञान तत्व के इसी अंक के बच्छराज जी खटेर के पत्र के उत्तर में आपने लिखा कि

''इस्लाम का पहला उद्देश्य येन–केन प्रकारेण भारत को दारूल हरब से बदलकर दारूल इस्लाम बनाना है। संघ (राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ) उनके इस प्रयत्न को येन केन प्रकारेण रोकना चाहता है। संघ के अधिकांश लोग अपने इस प्रयास के प्रति पूरी तरह ईमानदार हैं, चाहे इसके लिये उन्हें कितना भी छल–प्रपंच क्यों न करना पड़े। मैं संघ के उद्देश्य का पूरी तरह समर्थक हूँ, मार्ग में कुछ मतभेद अवश्य हैं।''

समर्थन और मतभेद दोनों बहुत दिनों तक एक साथ नहीं चल सकते हैं। एक व्यक्ति एक ही साथ कई परस्पर विरोधी विचार धाराओं का संवाहक नहीं हों सकता। संघ का समर्थन पूरी तरह से है तो मार्ग का मतभेद कैसा? यदि संघ छल–प्रंपच करता है तो आप भी अब उसी के शिकार हैं।

आन्दोलन समय की पुकार है, अगुआ चाहिये। वह अगुआ गांन्धी,लोहिया,आचार्य नरेन्द्र देव, विनोबा तथा जयप्रकाश नारायण से प्रतिबद्ध हो। सर्वोदय के लोग आपकों अच्छी प्रकार जानते हैं और आप भी उन्हें अच्छी तरह से जानते हैं। आदरणीय बंग जी से आपका व्यक्तिगत लगाव है, उसे वैचारिक नहीं कहा जा सकता है।

संघ में उत्तराधिकारी का मनोयन होता है वह एक चालुका नेतृत्व का परिचायक है। साम्यवादियों में कम्यून के द्वारा नेता का मनोयन होता हैं अर्थात् दोनों अलोकतांत्रिक हैं। इस्लाम का आतंक पूरी दुनिया में है। यह समस्या वैश्विक है। विश्व का सबसे बड़ा महा आतंकवादी अमेरिका इस्लामी आतंकवाद से युद्ध कर रहा है। अच्छा होगा आप और संघ इस्लाम का नेस्तानाबूद करने के लिये, अमेरिका जिन्दाबाद का प्रचार–प्रसार करते हुए वैश्विक स्तर पर अभियान शीघ्र प्रारंभ कर दें। दूसरे की ताकत पर अपने लक्ष्य की पूर्ति आज तक नहीं हुयी है, न तो भविष्य में होगी। संघ और साम्यवादी दोनो से समान दूरी से ''लोकतांत्रिक समाजवाद'' की स्थापना हो सकेगी। समर्थन सर्वग्राही हा, तो ठीक है। विरोध गुण दोष के आधार पर ही होता हैं।

उत्तरः— मैं अब भी मानता हूँ कि समाज में श्रमजीवियों का शोषण करने के लिये बुद्धिजीवियों ने कई तरोके खोज लिये हैं। श्रम की अपेक्षा शिक्षा को महत्वूपर्ण बनाना भी उन तरीको में से एक है और आरक्षण का समर्थन या विरोध करने में बुद्धिजीवियों के ही दो गुट भिड़े हुए हैं। सच्चाई यह है कि आरक्षण न तो श्रम शोषण का आधार है न ही श्रम शोषण मुक्ति का आधार। यदि श्रम शोषण वर्ग बंटवारे में संघर्ष करे तो न्याय अन्याय के विवाद से दूर रहना अन्याय नहीं है।?

सिद्धान्त रूप में किसी भी प्रकार के आरक्षण के विरूद्ध हूँ क्योंकि आरक्षण सदा ही योग्यता के उत्थान में असंतुलन पैदा करते है किन्तु मं अभी श्रम के साथ न्याय के संघर्ष को अधिक महत्वपूर्ण मानने के कारण आरक्षण की वर्तमान व्यवस्था के समर्थन या विरोध को मुद्दा बनाकर सक्रियता को समयानुकूल नहीं मानता।

अमेरिका के समर्थन और विरोध के मुद्दे पर मेरी नीति वैसी नहीं जैसी साम्यवादियों की है। हम अमरिका का विरोध करके उससे संघर्ष में पक्षकार बने या प्रगति की दौड़ में हम अमेरिका से आगे निकलकर उसे पोछे छोड़े ये दोनो अलग–अलग विषय हैं। भारत के नीति निर्धारकों ने दो खेमे बनाकर भारत का बहुत नुकसान किया है। भारत का साम्यवाद उसका एक खेमा है। मेरी इच्छा है कि हम पहले अपनो क्षमता को तौल कर देखें यदि हमारे पास दुनिया के अमेरिका सहित अन्य देशों से बौद्धिक प्रतिस्पर्धा में आगे बढ़ने लायक क्षमता विकसित करने की संभावनाए हैं तो हमं

विरोध का मार्ग छोड़कर प्रतिस्पर्धा के मार्ग पर चल देना चाहिये और नहीं ह तो अमेरिका विरोधी गुट में शामिल होकर उसका विरोध शुरू कर देना चाहिये। साम्यवादियों ने अन्तिम निर्णय कर लिया है कि ऐसी चर्चा अनावश्यक है और भारत को विरोध के मार्ग पर ही चलने की जरूरत है। मैं उनकी बात से सहमत नहीं।

मैंने संघ के विषय में लिखते समय जो कुछ लिखा उसके उत्तर में लिखते आपकी भाषा में मुझे नाराजगी की झलक मिली और आप जैसा विद्वान सहयोगी यदि नाराज हो जाय तो मुझे चुप हो जाना चाहिये। इसलिये मैं इस प्रश्न पर कभी बाद में लिखने की कोशिश करूँगा।

(2) मोहम्मद शफी आजाद, बाराबंकी, उत्तर प्रदेश

आप एक बहुत हो अच्छे मिशन में लगे हुए हैं। परिणाम अवश्य ही अच्छा होगा। आप हमसे किस प्रकार के सहयोग की अपेक्षा करते है? संविधान संशोधन आवश्यक है।

उत्तरः– आप ज्ञान तत्व के ग्राहक बनाने से अपनी सक्रियता की शुरूआत कर सकते हैं। सितम्बर में फैजाबाद मीटिंग में मैं आऊँगा तब और चर्चा होगी।

प्रश्न–(3) श्री मृत्युंजय शर्मा, भिलाई, छत्तीसगढ़।

मैं रविकान्त जी खरे के सुझाव से असहमत होते हुए भी महसूस करता हूँ कि सर्वोदय के ही भरोसे परिर्वतन संभव नहीं। अन्य समान धर्मी संगठनों से भी सम्पर्क उचित होगा। अमरकंटक के संत नागराज जी भी ऐसे विद्वान हो सकते हैं। वे भी नया संविधान बनाने में वर्षो से लगे हैं। स्वामी सत्यमित्रान्नन्दजी, स्वामी रामदेव जी आदि सन्तों से भी बहुत सहयोग मिल सकता है। मुक्तानन्द जी तो लम्बे समय से जुड़े हैं। उनके विचारों की अनदेखी भी ठीक नहीं। यदि मुक्तान्नद जो की इच्छा है कि भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण ज्ञान तत्व के माध्यम से समाज के समझ प्रस्तुत हों तो इसमें तो कोई गलती नहीं दिखती। उनके पत्र के उत्तर में बारह सौ रूपया किराया की बात जोड़ना अच्छा नहीं था। ऐसे प्रसंग से बचना चाहिये। स्वामी जी ने कार से आने जाने का किराया बारह सौ रूपया मांगा था तो अधिक नहीं था। इतना तो खर्च होता ही हैं।

उत्तरः– स्वामी मुक्तानन्द जी के किराये की चर्चा को मोहम्मद शफी भाई ने भी ज्ञान तत्व के स्तर से नीचे का माना और आपने भी। यह बात को प्रमाणित करता है कि ज्ञान तत्व का एक वैचारिक स्तर बना हुआ है और उसमें व्यक्तिगत आरोप व प्रत्यारोप उसका स्तर गिराते हैं जिससे बचना चाहिये।

आपने स्वामी रामदेव जी, सत्यमित्रानन्द जी, नागराज जी आदि को उपयोगिता बताई। मैं इन सबकी उपयोगिता समझकर विचारों का आदान प्रदान करता हूँ। रामदेव जी की स्वास्थ्य और योग विषय पर सक्रिय हैं। नागराज जी से मैं मिल चुका हूँ। वे समाज निर्माण का संविधान बनाने में सक्रिय हैं। मेरा विषय समाज और राज्य के बीच के सम्बन्धों तक सीमित है जो इन दोनो का नहीं। सत्यमित्रानन्द जी से अभी चर्चा नहीं हुई। मुक्तानन्द जी का विषय भी समाज और राज्य के सम्बन्धों का है और वे पिछले बीस वर्षो से हम लोगों के साथ जुड़े भी हैं। वे एक अच्छे विद्वान है। और उपयोगी भी हैं। किन्तु उनकी एक बड़ी कमजोरी उनमें सन्यासी और गृहस्थ के बीच का हीन भाव है। वे जिस तरह को तानाशाही करते हैं वह प्रायः कष्टकर होती है। गृहस्थ तो हमेशा ही संत को सम्मान देता है किन्तु सन्त यदि अपने सन्यास का अहंकार करे तो कठिनाई होती है। उन्होने प्रायः पत्रों में मेरी व्यक्तिगत आलोचना की जिसे मैंने यह सोचकर टाल दिया कि इससे ज्ञान तत्व का स्तर गिरेगा। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जिसके विचारों में दम होता है वह तर्को के विरूद्ध तर्क प्रस्तुत करता है, व्यक्तिगत आलोचना नहों करता। कोई व्यक्तिगत आलोचना शुरू कर दे तो मैं मान लेता हूँ कि इसे मुद्दे पर इस विद्वान के पास कोई बात कहने के लिये तो है नहीं और श्रेष्ठता का दंभ उसे स्वीकार न करने का मजबूर कर रहा है। इसलिय वहीं स्थापित व्यक्तित्व आलोचना का सहारा ले रहा है। मुक्तानन्द जी ने पिछले दस वर्षों में जब भी मेरी व्यक्तिगत आलोचना की तो मैं सच्चाई को समझने के कारण ही चुप रहा और ज्ञान तत्व में उल्लेख नहीं किया। नवीनतम अंक के उत्तर में भी उन्होंने जो व्यक्तिगत बाते लिखी है।

उनका उल्लेख उचित नहीं क्योंकि अनेक अच्छाइयों के साथ यदि किसी विद्वान में सन्यास का दंभ भी हो तो वह दंभ दूर हो सकता ह। मुक्तानन्द जी की नीयत पर कभी कोई शंका नहीं रही और दंभ की कमजारी स्वभाव तक ही सीमित है। मुझे

विश्वास है कि वे इस बात को भले ही जीवन भर न समझे हों किन्तु अब तो समझेगें। आप विश्वास रखिये कि ज्ञान तत्व का स्तर गिरने की स्थिति नहीं आयेगी। आप दोनों के पत्रों ने तो मेरा बहुत आत्मविश्वास बढ़ाया है कि हमारे विद्वान पाठकों की नजर में ज्ञान तत्व की कैसी वैचारिक छवि है।

आपने उनके विचारों को ज्ञान तत्व में समुचित स्थान देने की बात कही। ज्ञान तत्व में उनके विचार समुचित से अधिक आते हैं। उन्हें तो हम लोग मार्ग दर्शक के समान मानते रहे हैं। किन्तु उन्होंने जब यह लिखा कि ज्ञान तत्व में मेरी जगह वे लिखें और मैं उनसे प्रश्न करूँ तो मेरे धैर्य का बांध टूट गया। ज्ञान तत्व नई राह खोजने में लगे लोगों को प्रेरित करती है। यदि विषय मुक्तानन्द जी चुनेंगे और लिखेंगे तो वे तो वही घिसी पिटी बात रटना शुरू करेंगे कि अमीरी रेखा बनाओं और गोहत्या बन्द करो। मैं ज्ञान तत्व इसलिये नहीं निकालता कि मैं मुक्तानन्द जी का शिष्य हूँ। यदि वे मुझे शिष्य मानकर बराबर कुछ भी आदेश देते हैं और मैं मानता हूँ तो यह उनका अधिकार नहीं। मैं पुनः कहता हूँ कि ज्ञान तत्व के विषय चयन और केन्द्रीय लेखन में मेरे स्थान पर अपनी भूमिका का उनका निर्देश गलत था। सब लोग भिन्न–भिन्न दिशाओं में प्रयत्न कर रहे हैं। मैं भी एक प्रयत्न कर रहा हूँ। मैंने किसो से नहीं कहा कि अपना कार्य मेरे सुपुर्द कर दो। दूसरों को भी नहीं कहना चाहिये। इस प्रकरण को मैं यह मानकर समाप्त करता हूँ कि मुक्तानन्द जी ने स्वभाववश बिना गंभीरता के ऐसा लिख दिया जो अब भूल जाने योग्य है।

(4) श्री मृत्युंजय शर्मा, भिलाई, छत्तीसगढ़।

आप ज्ञान तत्व के माध्यम से फांसी की सजा का समर्थन तो करते ही हैं, कभी भी सार्वजनिक फांसी तक की वकालत करने लगते हैं। मैं फांसी सम्बन्धी आपके विचारों से सहमत नहीं।

उत्तर :– सहमति असहमति आपका अपना और मेरा अलग–अलग अधिकार है। आप और मैं दा अलग–अलग दृष्टिकोणों से विषय को देख रहे है। वर्तमान परिस्थतियों के आकलन अनुसार मैं आसुरी प्रवृतियों के पर नियंत्रण के प्रयासों पर अधिक चिन्तन कर रहा हूँ आप दैवी प्रवृत्तियों के विकास के प्रयासों पर। मेरा मानना है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सुरक्षा और न्याय की गारंटी से मानवता मजबूत होगी। आपका मानना है कि मानवता के मजबूत होने से न्याय ओर सुरक्षा अपने आप ठीक हो जायगी मुझे लगता है कि देश में आंतकवाद, हिंसा, बलात्कार जैसे जघन्य अपराधों की बाढ़ को देखते हुए मानवीय दण्ड की चर्चा बेवक्त का बाजा बजाने जैसा है। मैं तो इस बात पर चर्चा करने का पक्षधर हूँ कि आतंकवाद और हिंसा को नियंत्रित करने के लिये हमें क्या–क्या संशोधन करने होंगे, दण्ड प्रक्रिया, अमानवीय दण्ड, कठोर दण्ड आदि सबके संशोधनों पर विचार कैसे मानवीय हो इस परिप्रेक्ष्य में दण्ड प्रक्रिया और फांसी की सजा पर विचार किया जाय। न्याय अन्याय के बीच युद्ध में मेरी भूमिका आतंकवाद और अन्याय के विरूद्ध संघर्षरत पक्षो के साथ होने से मुझे सार्वजनिक फांसी तक की आवश्यकता महसूस हाती है। आपने अपनी भूमिका संघर्षरत पक्षों से हटकर रेडक्रास की बना ली है। इसलिये आप सार्वजनिक फांसी ही नहीं फांसी तक को बन्द करने की सिफारिश कर रहे हैं।

प्रश्न(5) डॉ0 गुरूशरण, सम्पादक आचार्य कुज, ग्वालियर, मध्यप्रदेश।

ज्ञान तत्व एक सौ ग्यारह में लाभ का पद और राजनीति शीर्षक से आपका लेख पढ़ा और मैं आपके अभिमत से सहमत हूँ कि राजनीति का व्यवसायीकरण होता जा रहा है। यह अपराधीकरण जैसा ही है। राजनीति में व्यावसायिक लोगों की रूचि दिनोंदिन बढ़ने लगी है। यहां तक कि आरक्षण के बवाल में भी कार्पोरेट जगत तक सड़कों पर आ गया हैं जहां तक लाभ के पद का सवाल है वह विधेयक राष्ट्रपति के पुर्नविचार के लिये लोक सभा को वापिस भेज दिया है और साहस करके हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। इसका कुछ तो असर होगा और हो सकता है कि इस बीच लाभ के पद वालों को पद मुक्त करने की कार्यवाही ही हो जायें।

आप अपने मिशन में पूरी लगन और निष्ठा के साथ लगे हुये है तो इसका परिणाम अवश्य निकलेगा। प्रतिनिध वापिस का अधिकार यदि जनता के हाथ में आ गया तो आज की बेलगाम राजनीति पर अंकुश लगाया जा सकेगा। वैसे अभी भी भारत का मतदाता जागरूक है जिसके परिणाम स्वरूप समय–समय पर विभिन्न प्रदेशों में आये दिन परिर्वतन होते रहते हैं हाल ही में तमिलनाडु में जयललिता को मतदाताओं ने नकार दिया और उत्तर प्रदेश में भी लगता है कि आगामी निर्वाचन में तथा कथित समाजवादी सरकार को धक्का अवश्य लगेगा। इन दिनों जो हिंसा की घटनाएँ बढ़ रही हैं वे बहुत चिंता का विषय है। विशेषकर छत्तीसगढ़ में नक्सली हिंसा ओर तेलांगना के आन्दोलन में सुश्री उमा भारती की बढ़ती हुई रूचि आदि अशांति ही फैलाने वाले मसले हैं।

प्रश्न (6) श्री विश्वनाथ सिंह, हिल्सा, नालन्दा, बिहार

ज्ञान तत्व अंक एक सौ दस में आपका आग्रह उचित है कि संचालकों से संचालकों की सुरक्षा चाहिये। किन्तु व्यवस्था परिवर्तन अभियान के चार सूत्रों के दो भाग करके दो को अधिक और दो को कम महत्व देना कितना उचित होगा?

उत्तरः— यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि धूर्त हमेशा छल कपट का सहारा लेते रहे हैं अर्थात् जो भी वेश—भूषा या विचार धारा समाज में स्थापित होगी, धूर्त तत्काल उसकी नकल करेंगे। राक्षस बहुत मायावी होते हैं यह बात कई बार प्रमाणित हुई है।

रावण ने भी सीता हरण के लिए साधु वेश इसलिये चुना क्योंकि साधु वेष उस समय की परिस्थति में इस सीमा तक सम्मानित था कि वहीं सीता छलने का आसान माध्यम संभव था। जिस तीव्र गति से व्यवस्था परिवर्तन आंदोलन में न बदल जावें इसकी सतर्कता के लिये हमारे कार्यालय द्वारा उक्त अंक एक सौ दस में संचालक और संचालिका का अंतर स्पष्ट किया गया है।

मंने व्यवस्था परिवर्तन अभियान के चार सूत्रों में से प्रथम और द्वितीय को तृतीय और चतुर्थ की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण माना। तीन—चार वर्ष पूर्व हमारे दो ही सूत्र थे पहला और दूसरा। सर्वोदय ने बढ़ाकर उसे तीन कर दिया। तीसरा सूत्र दूसरे सूत्र के साथ कुछ भ्रम उत्पन्न करता है। हम दूसरे सूत्र में यह मांग कर रहे हैं कि सत्ता और अधिकार विकेन्द्रित हों। केन्द्र के अनेक सरकार और संसद का हस्तक्षेप कम करके निर्णय का अधिकार परिवार, गांव जिले को दिया जाय। इसका अर्थ हुआ कि केन्द्र के अनक विभाग नीचे की इकाइयों में शामिल हो जायेंगे। इसके ठीक विपरीत तीसरे सूत्र में हम मांग कर रहे हैं कि नीति निर्देशक सिद्धान्त बाध्यकारी हों। नीति निर्देशक तत्वों की अनेक बातें केन्द्रीय हस्तक्षेप से निकलकर परिवार,गांव, या जिला की सूची में शामिल होने वाली है तो फिर उसे हम दूसरे सूत्र में तो केन्द्र से हटाकर नोचे देने की बात कर रहे हैं और तीसरे सूत्र में हम उन्हीं कार्यो को केन्द्र के लिये बाध्यकारी बनाने की मांग कर रहे हैं। हमने सर्वसेवा संघ के प्रस्ताव के विरोधाभास को भी आंदोलन प्रभावी हो इसलिये मान लिया था। अब हमने उस प्रस्ताव की भाषा कुछ बदलनी शुरू की ह कि केन्द्र सरकार को प्राप्त दायित्व उसके लिये बाध्यकारी होंगे। नीति निर्देशक शब्द हम धीरे—धीरे हटा रहे है।

इसी तरह जब राष्ट्रीय स्वाभिमान आंदोलन से जुड़ाव हुआ तो एक सूत्र और जुड़ा कि विदेशों के साथ हुए समझौते संसद में रखे जावें। यह प्रस्ताव विरोधाभासी नहीं है। इसके जोड़ने में आपत्ति इसलिये नहीं है कि भारत की अनेक समस्याओं में से यह भी एक है। किन्तु यह प्रस्ताव वर्तमान व्यवस्था पर निर्णायक प्रभाव नहीं डालता है। कल्पना करिये कि सरकार प्रस्ताव क्रमांक एक और दो को न मानकर तीन और चार को मान ले तो हमारो आधी मांग पूरी हो गई? मेरा तो मानना है कि यदि सरकार पहले और दूसरे प्रस्ताव को मान ले और तीसरे और चौथे को न भी माने तो हमारा तीन चौथाई उद्देश्य पूरा हो जायेगा।

मैं सिद्धान्त रूप से साम्यवाद का कभी प्रशंसक नहीं रहा। किन्तु भारत के सभी राजनैतिक दलों में से साम्यवादियों की सोच ही सर्वाधिक स्पष्ट है। भारत में छोटे—बड़े सैकड़ों दल है जिनमें अनेक बड़े दल भी है किन्तु किसी के एजेन्डे में इस चार सूत्रों में एक भी सूत्र नहों। सब समाज को धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता में बांटकर सत्ता प्राप्त करने के षड्यंत्र में लगे हैं। सिर्फ साम्यवादी ही हैं, जिन्होंने हमारे पहले और चौथे सूत्र पर अपनी आवाज उठाई है। सोमनाथ जी चटर्जी ने प्रतिनिधि वापसी के अधिकार के मुद्दे को बड़ी बेबाकी से मांग के रूप में रखा और अतुल अंजान जी ने हमारे चौथे मुद्दे ''विदेशी समझौते संसद में प्रस्तुत करने की अनिवार्यता'' को बेबाकी से प्रस्तुत किया। मैं इस विवाद में नहीं पड़ रहा कि उन्होंने हमारे मुद्दो का समर्थन किया था ये दोनों मुद्दे प्रेरणा के परिणाम थे। मैं इसलिये खुश हूँ कि वहीं साम्यवादियों ने आवाज को बुलन्द की। मुझे तो लगता है कि एक बार यदि साम्यवादी हमारे दूसरे प्रस्ताव ''केन्द्र के अधिकार कम करके नीचे देने'' के संबंध में भी ध्यान दें तो उन्हें स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

मैं स्पष्ट कर दूँ कि हमारा सम्पूर्ण आंदोलन इस बात पर टिका है कि व्यक्ति, परिवार,राष्ट्र और समाज के राज्य के साथ वर्तमान संबंधों का पुनर्निधारण होना चाहिये। अभी संबंधों का जो संविधान बना है। उसे राजनेताओं ने बनाकर उसे एकपक्षीय रूप से अपनी ओर झुका लिया है। अब एक लोक संविधान सभा बने जो व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र और समाज के साथ राज्य के संबंधो का नया संतुलन तैयार करे। हमारा आंदोलन इसी संबंध पुनर्निर्धारण की एक कड़ी के रूप में देखने की आवश्यकता है।

(7) श्री रामनरेश कुशवाहा, बरेली, उत्तर प्रदेश।

ज्ञान तत्व के माध्यम से आप एक नई राजनैतिक क्रान्ति का सपना देख रहे हैं जिसके केन्द्र में विचारधारा में बदलाव प्रमुख है। अभी भारत में अनेक सामाजिक राजनैतिक संगठन सक्रिय हैं जन सबकी विचारधाराएँ अलग—अलग हैं। आप विचारों के आधार पर किस संगठन को सर्वाधिक निकट पाते है? आप उस संगठन से जुड़ क्यों नहीं जाते?

भारत में अभी जो भी संगठन काम कर रहे हैं उनमें साम्यवादी, समाजवादी, गाँधीवादी, धर्मवादी प्रमुख हैं। साम्यवादियों की एक पृथक पहचान है ये अधिकतम केन्द्रोयकरण के पक्षधर हैं। साम्यवादी शासन व्यवस्था समाजवादी है। इन्होंने अपनी विचारधारा में समाजवाद का शब्दार्थ ही बदलकर समाज को निर्णय के अधिकारों की अधिकतम समानता के

स्थान पर समाज में अर्थ की अधिकतम समानता के स्थन पर समाज में अर्थ की अधिकतम समानता कर दिया। तीसरी व्यवस्था गाँधीवादियों की है। इनमें कांग्रेस भी शामिल है और सर्वोदय भी। कांग्रेस पार्टी की कोई विचारधारा नहीं है। लोकतांत्रिक तरीके से अधिक से अधिक समय तक सत्ता संचालन की इनकी विचारधारा है चाहे इसके लिये केन्द्रीयकरण से समझौता करना पड़े अथवा विकेन्द्रीकरण से। गाँधीवादियों में सर्वोदय से जुड़ी संस्थाएँ पूरी तरह विकेन्द्रीकरण की पक्षधर हैं। इनका सत्ता से भी लगाव न के बराबर ही है। धर्मवादी संस्थाओं में आर्य समाज, गायत्री परिवार तथा संघ परिवार शामिल हैं। आर्य समाज का सारा समय आजकल या तो आपसी झगड़ों में बीतता है अथवा समाज के कार्यो में। राज्य और समाज के बीच कैसा संतुलन रहे इससे इनकी कोई रूचि नहीं है। अधिकारों के विकेन्द्रीकरयकरण के विषय पर य कभी चर्चा भी कही नहीं करते। गायत्री

परिवार की सारी विचारधारा भी सामाजिक कार्यो तक सीमित हैं। संघ परिवार की विचारधारा भी सामाजिक कार्यो तक सीमित हैं। संघ परिवार की विचारधारा पूरी तरह केन्द्रित शासन व्यवस्था की है। संघ तो घोषित रूप से भी एकात्मक शासन व्यवस्था का पक्षधर है। तानाशाही शासन व्यवस्था के मामले में संघ और साम्यवादियों के विचार लगभग एक जैसे ही है।

मैंने विचारधारा के मामले में खूब विचार किया। सर्वोदय को छोड़कर कोई दूसरा ऐसा संगठन नहीं जो विकेन्द्रीकरण की दिशा में कुछ सोचता हो। स्वामी दयानन्द ने तो आर्य समाज के दसवें नियम में साफ लिख दिया था किन्तु आर्य समाज ने उस नियम पर कभो विचार ही नहीं किया। वर्तमान पृष्ठभूमि में गाँधी जी अकेले व्यक्तित्व रहे जिन्होंने विकेन्द्रीकरण की इतनी स्पष्ट विचारधारा पर अब भी कायम है। यदि विचारधारा के रूप में परीक्षण करें तो व्यवस्था परिवर्तन अभियान के ऊपर के तीनों सूत्र सर्वोदय विचारधारा के ही हैं और चौथा सूत्र भी उनमें भिन्न नहीं हैं।

जहाँ तक जुड़ने की बात है तो हम लोग तो जुड़े ही हुए हैं। अन्तर सिर्फ यही है कि सर्वोदय इन चार सूत्रीय अभियान के साथ–साथ अन्य अनेक कार्यक्रमों में भी सक्रिय रहता है जबकि व्यवस्था परिर्वतन अभियान अपनी शक्ति अनुसार अन्य किसी कार्य में सक्रिय नहीं। जुड़ने में एक कठिनाई यह है कि ज्ञान यज्ञ मण्डल समाज में अन्य सभी विषयों पर एक सार्थक बहस को गति देना चाहता है जिसमें सर्वोदय को रूचि नहीं। यदि दोनों संगठन एक काम कर रहें हैं तथा आपस में संवाद है तो जुड़ने न जुड़ने से कोई विशेष फर्क नहीं पड़ेगा।

(8) श्री सुरेशचन्द्र दुबे, इन्दौर, मध्यप्रदेश

मेरे सपनों का भारत अंक एक सौ तेरह में आपने–अपने विचारों को जो विस्तार दिया है वह भविष्य में विवाद का कारण बन सकता है। व्यक्तिगत विचारों को प्रतिष्टा का प्रश्न बनाना संगठन के लिये घातक है। चार सूत्रों पर चलने वाली मुहिम को अन्यत्र मोड़ना ठीक नहीं। आपका वैचारिक सोच लोक संवधिान सभा में विचारणीय हो सकती है।

चोरी, डकैती, बलात्कार, मिलावट, आंतक आदि कुछ ऐसे अपराध हैं जो रामानुजगंज से लेकर दिल्ली तक और कुछ हद तक सारी दुनिया में बढ़ रहे हैं किन्तु मुस्लिम कट्टरवाद तो भारत में ही ज्यादा बढ़ रहा है। अब्दुल हमीद जैसे राष्ट्रभक्त मुसलमानों के होते हुए भी पाकिस्तान की शह पर साम्प्रदायिक आतंक फैलाने वाले मुसलमानों की लम्बी सूची हैं। दुख होता है कि भारत के मुसलमान भाइयों तथा राष्ट्रवादी धर्मनिरपेक्षतावादी संगठनों द्वारा भी मुस्लिम कट्टरवाद आंतकवाद के विरूद्ध लगातार मुहिम नहीं चलाई जाती है। इसमें आम मुसलमानों में धर्म निरपेक्ष भावना को नुकसान होता है। इन सब समस्याओं के लिये समान नागरिक संहिता एक उचित समाधान है। आप व्यवस्था परिर्वतन अभियान में भी अलपसंख्यकों को शामिल करने के प्रति अवश्य ध्यान दें जिससे हम पर कहीं एक पक्षीय होने की बात लागू न हो सकें।

आपने परिवार की वर्तमान रक्त संबंधों वाली परिभाषा को बदलने का प्रयास किया है। इस नकली परिभाषा से बहुत कठिनाई होगी। परिवार छोड़कर दूसरे परिवार में जाना बहुत विवादास्पद मुद्दा है। इसी तरह आपने शिक्षा, स्वास्थ्य, आदि को पूरी तरह शासन से हटाकर निजी हाथों में दे देने की बात कही है। यह भी बहुत गंभीर मसला ह। कहों सब कुछ गड़बड़ न हो जावे यह शंका बन रही है। ग्राम पंचायत हो या स्वायत्तशासी संस्थाएँ सब पर असरदार लोगों का प्रभाव रहता ह। जब उन पर से सरकार का डर खत्म हो जाएगा तो अंकुश कैसे रहेगा यहि चिन्ता का विषय है। वर्तमान समय में ही अलग–अलग शिक्षा के कारण सम्पन्न और गरीब दलित बच्चों के संस्कार अलग–अलग हो रहे हैं। यदि शिक्षा को और स्वतंत्रता दे दी गई तो यह अलगाव और बढ़ेगा और इसके कारण ऊँच नीच गरीब अमीर के संस्कार भी बढ़ेगे।

उत्तरः–मेरे सपनों का भारत में लिखा सारा विषय ज्ञान यज्ञ मण्डल से संबधित है, अर्थात् विचार मंथन के लिये समाज में प्रस्तुत है। ये विचार न निष्कर्ष हैं न ही व्यवस्था परिवर्तन अभियान के हिस्से हैं। मेरे विचारों को व्यवस्था परिवर्तन अभियान से जोड़ने की भूल न करें। व्यवस्था परिवर्तन अभियान तो चार सूत्रीय संविधान संशोधन तक सीमित है। पाचवीं कोई चर्चा उक्त अभियान का हिस्सा नहीं है। अब तक पैदा होने वाले भ्रम का कारण दोनो संस्थाओं में मेरा संयोजक रहना है। इसके कारण दोनो कार्यक्रमों की घालमेल हो जाती है। इसलिये अब व्यवस्था परिवर्तन अभियान के लिये एक पृथक संयोजक मंडल बनाया गया है जो एक अधिकार प्राप्त बाडी होगी तथा उक्त बाडी मे मेरी भूमिका रबर स्टांप राष्ट्रपति के समान हस्ताक्षर कर्ता की रहेगी। ज्ञान तत्व मंथन में भी व्यवस्था परिवर्तन अभियान के समाचारों के लिये उत्तरार्ध की व्यवस्था की गई है।

आपने समान नागरिक संहिता की बात कहकर फिर व्यवस्था परिवर्तन अभियान के संगठन में मुसलमानों, इसाइयों की चिन्ता की सलाह भी दी यह एक दूसरे के विपरीत है। मैं समान नागरिक संहिता का पूरी तरह विचारों से भी समर्थक हूँ और क्रिया में भी। हमारे किसी भी संगठन में धर्म जाति के आधार को कोई महत्व नहीं दिया जा सकता। संगठनों में कितने लोग किसी धर्म जाति के हों यह हमारे आकलन का विषय है ही नहीं।

मैने परिवार शब्द की वर्तमान परिभाषा को समाज में नहीं बदला है बल्कि उसे संविधान में स्थापित किया है। अभी यदि एक हजार परिवार रक्त संबंध से बंधे हैं तो भविष्य में रक्त संबंध के आधार पर बनने वाले परिवार पर कोई रोक तो होगी नहीं किन्तु यदि बिना रक्त सम्बन्ध वाले दस साधु या बिना रक्त संबंध वाले को भी कोई परिवार अपने साथ जोड़ना चाहे तो उस पर रोक क्यों? रक्त संबंधों की कठोर परिभाषा को यदि थोड़ा मुलायम किया जा रहा है तो इसमें समस्या क्या आने

वाली ह? हम रक्त संबंधों वाली परिभाषा के आधार पर बनने वाले परिवारों के साथ नई परिभाषा में कोई छेड़छाड़ नहीं करने जा रहे हैं।

मैंने शिक्षा और स्वास्थ्य को सरकार से हटाकर निजी हाथों की बात नहीं कहीं है। व्यवस्थाएँ दो प्रकार की होगी, (1) सत्ता सरकार, (2) समाज सरकार। सत्ता सरकार के पास सेना,पुलिस, वित्त, विदेश, न्याय विभाग रहेंगे। बाकी सभी विभाग समाज सरकार के पास होंगे। सत्ता सरकार का गठन सीधे चुनाव की वर्तमान प्रणाली से होंगे किन्तु समाज सरकार का गठन परिवार, ग्राम,जिला, प्रदेश और केन्द्र की समितियों द्वारा क्रम से अप्रत्यक्ष होगा। सत्ता सरकार अपने कार्य नीचे की इकाइयों को दे सकती है। समाज सरकार में नीचे की इकाइयाँ अपने कार्य ऊपर को देंगे। शिक्षा और स्वास्थ्य व्यवस्था आदि सेना पुलिस वाली सरकार से हटाकर समाज सरकार के पास रहे तो क्या समस्या खड़ी हो सकती है। समाज सरकार तय करेंगी कि उसे यह व्यवस्था स्वयं चलानी है या निजीकरण करना है। नई व्यवस्था में सत्ता सरकार के पास पैसा ही इतना नहीं होगा कि वह स्कूल चलाये। सारा पैसा तो समाज सरकार के पास रहेगा जिससे वह पूरी व्यवस्था कर सकती है।

आपने असरदार लोगों के प्रभाव की बात की। यह बात सच भी है। यह भी एक कारण है कि विकेन्द्रीकरण होना आवश्यक है। गांव का सरपंच यदि अपने प्रभाव से अत्याचार करेगा तो उसे दण्डित करना आसान होगा किन्तु असरदार मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री अत्याचार करगा तो कौन दण्डित करेगा? क्या गांव का सरपंच उसे रोक सकेगा? जिस देश में असरदार लोगों के प्रभाव का अत्याचार ग्रहण करने का खतरा हो वहाँ कभी भी सत्ता केन्द्रित होने देना ठोक नहीं। हमारी नई व्यवस्था में ग्राम सभा को अधिकार प्राप्त होंगे ग्राम पंचायत को नहों। ग्राम सभा के भी अनेक अधिकार प्राप्त होंगे ग्राम पंचायत को नहीं। ग्राम सभा के भी अनेक अधिकार परिवारों में विखंडित हो जायगे। मेरा आपसे निवेदन है कि प्रभावशाली लोगों को अधिक अधिकार मिलने की वकालत करने के पूर्व गंभीरता से विचार कर लें।

शिक्षा सबकी समान हो या स्वतंत्र यह विवाद बहुत पुराना है। दोनों के अपने–अपने गुण दोष है। शिक्षा कैसी हो समान या स्वतंत्र यह तो पृथक प्रश्न है। पहले तो यह विचारणीय है कि शिक्षा रोजगार के अवसर पैदा करती है या श्रम के अवसरों में से ही छीना झपटी करती है। मैंने बहुत विचार करने के बाद पाया कि बेरोजगारों को न्यूनतम रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने का आधार शिक्षा न होकर श्रम है। शिक्षा पर किया जाने वाला खर्च और उस खर्च के बाद बेराजगारी में वृद्धि सरासर गलत नीति है। जब तक भारत में एक भी श्रम जीवि बेरोजगार और भूखा है तब तक शिक्षा पर शासन द्वारा एक पैसा भी खर्च करना श्रम के साथ अन्याय है। यह अन्याय उस समय शोषण का रूप ले लेता है जब ऐसी शिक्षा के लिये श्रम जीवियों के उपभोग की तथा उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं पर टैक्स लगाया जाता है। यह शोषण भी तब पराकाष्ठा पर पहुँच कर अत्याचार में बदल जाता है जब ऐसे शिक्षित व्यक्ति के रोजगार भत्ता दिया जाता है। श्रम जीवि अशिक्षितों के शरीरों से टैक्स के रूप में एक–एक बूंद खून निचोड़कर भरी बोतल रूपी उच्च शिक्षा प्राप्त डिग्री के लाभ के लिये शिक्षा सबकी समान हो नहीं अथवा शिक्षा में जातीय धार्मिक आरक्षण हो या नहीं या शिक्षा को मूल अधिकार बनाओं जैसे मुद्दे उठ रहे हैं। क्यों नहीं कोई नेता यह मांग उठाता है कि श्रम प्रधान रोजगार और बुद्धि प्रधान रोजगार के बीच बुद्धिप्रधान रोजगार से शासन पूरी तरह बाहर होकर श्रम प्रधान रोजगार का सहायक बने? मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि बेराजगारी को बुद्धि और शिक्षा से बाहर निकालकर श्रम के साथ जोड़ना ही न्यायपूर्ण है तथा हम सब लोगों को शिक्षा समान हो या असमान यह शोषकों के बीच आपसी बंटवारे का विवाद मानकर इससे दूर रहना चाहिये। शिक्षा और भूख में से कौन प्राथमिक है यह पहले निपटारा होना आवश्यक है। भूखे के मुठीभर अनाज में से थोड़ा सा शिक्षा के लिये निकालने के विरूद्ध हमें कमर कस कर मैदान में आना भी आवश्यक है। यह उक्ति बिल्कुल निराधार है कि यदि शिक्षा दे दी जायगी तो भूख अपने आप मिट जायेगी। यदि यह बात सच होती तो आज लाखों शिक्षित बेराजगार क्यों घूम रहे हैं? सच्चाई इस उक्ति में है कि यदि श्रम को रोजगार मिल जावे तो शिक्षा अपने आप मिल जायगी। मेरे विचार में तो भारत की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में न्यायपूर्ण पक्षमात्र इतना ही होना चाहिये कि बेराजगार की परिभाषा में से शिक्षा को हटाकर श्रम को जोड़ दें। बेराजगार शब्द की अब तक की सभी परिभाषाओं को खारिज करके नई परिभाषा बना दें। "किसी स्थापित व्यवस्था द्वारा घोषित न्यूनतम श्रम मूल्य पर योग्यतानुसार काम का अभाव"।

विलासिता की वस्तुएँ और उस वग द्वारा उत्पादित वस्तुओं पर कर लगा सकते हैं। सुविधा की वस्तुओं पर आवश्यकतानुसार कर लगा सकते हैं, अन्यथा नहीं, सूची आप बनाइये। अनाज, साइकिल, खाद्य तेल, पशु आहार, आदि को आप भले ही विलासिता की वस्तु बता दें पर मैं तो इन्हें मूल आवश्यकता की वस्तु की मानता हूँ आप भले ही टेलीफोन और आवागमन को मूल आवश्यकता में शामिल कर लें किन्तु मैं तो इन्हें सुविधा से विलासिता तक में रखने का पक्षधर हूँ। कृत्रिम ऊर्जा को आप भले ही मूल आवश्यकता में रखें किन्तु मैं तो उसे विलासिता में मान रहा हूँ तेंतीस प्रतिशत नीचे का वर्ग कुल कृत्रिम ऊर्जा का दो तीन प्रतिशत, बीच वाले तेंतीस प्रतिशत कुछ ऊर्जा का पंद्रह से बीस प्रतिशत और ऊपर वाले तेंतीस प्रतिशत ऊर्जा का अस्सी प्रतिशत तक उपयोग करते हैं। ऊपर वालों की सम्पूर्ण आय के अधिकतम श्रोत कृत्रिम ऊर्जा आधारित हैं, जबकि नीचे वालों की आय के श्रोत श्रम आधारित। यदि मेरा गणित ठीक है तो आपको अपनी सोच बदलनी होगी अन्यथा

यह प्रमाणित करना होगा कि नीचे के लोग कृत्रिम ऊर्जा का अधिक उपयोग करते हैं और ऊपर वाले कम। इस संबंध में मैं खुली चर्चा के लिये तब तक तैयार हूँ जब तक कृत्रिम ऊर्जा के पक्षधर मान न लें या प्रमाणित न कर दें।

आपने संचालक और संचालित संबंधी मेरे विचारों को ठीक माना इससे मेरा उत्साह बढ़ा है। आपने साम्यवादियों को अब पूँजीवाद की पालकी ढोने वाला बताया है। यह बात वैसी नहीं है। पूंजीवाद और साम्यवाद शुरू से ही श्रम शोषण में लगे हुए हैं। पूँजीवाद श्रमजीवियों के नाम पर योजनाएं बनाता है और साम्यवाद श्रम सुरक्षा के नाम पर। श्रम को तो हमेशा जूठन से ही काम चलाना है। रसोई गैस पर सब्सी डी के मामले में पूँजीवादी और साम्यवादी एकजुट हैं और साइकिल पर टैक्स के मामले में भी दोनों एकजुट हैं और साइकिल पर टैक्स के मामले में भी दोनों एकजुट हैं। रसोई गैस का दाम बढ़ता है तो दोनो एक साथ विरोध करते हैं और साइकिल पर टैक्स लगाने में दोनों एक साथ चुप हो जाते हैं। दोनो का उद्देश्य एक है मार्ग भिन्न।

ज्ञान तत्व अंक एक सौ पांच को व्यवस्था परिवर्तन अभियान की गीता बताया। मैं जो भी लिखता हूँ उसमें न तो मेरा कुछ है न पुराने विद्वानों की पुस्तकों से उधार लिया हुआ है। आप जैसे विद्वानों के साथ विचार मंथन करने के बाद विचार रूपी मखन मैं जिस रूप में निकाल पाता हूँ वह मखन इकट्ठा करके ज्ञान तत्व के अंक एक सौ पांच में गया है। इस अंक को ज्ञान तत्व मंथन नाम से पुस्तक रूप भी दिया गया है जिसका मूल्य सिर्फ पांच रूपये रखा गया है। यात्रा के समय भी यह पुस्तक खरीद सकते हैं।

(9) श्री वैद्यनाथ चौधरी, उन्नाव, बेगूसराय, बिहार।

ज्ञान तत्व एक सौ दस पढा। आपने आतंकवाद का ठीक विश्लेषण किया है।

आपने ठीक ही लिखा कि गरीबी एक भावनात्मक आकलन है। इसका उपयोग वोट के लिए होता है। असली बात है आर्थिक असामानता। इस असली बात को भ्रम पैदा कर दरकिनार कर दिया जाता है। आज संचालक और संचालित वर्ग बन गया है। संचालक बमुश्किल एक प्रतिशत हैं और निन्यान्नवे प्रतिशत संचालित हैं।

संचालक राजनीति, समाजसेवा, धर्म या अन्य नाम पर दुकानदारी चलाते हैं। संचालक निरंतर पेशेवर किन्तु मजबूत होते जा रहे है। आपकी समीक्षा से मैं पूर्ण सहमत हूँ। लोक नियंत्रित तंत्र का लोकतंत्र चाहिए। जब तक ऐसा नहीं हाता लोकतंत्र छलावा ही रहेगा। आपकी अनवरत प्रयत्न जारी है। लोक जग नहीं रहा है। लोक प्रतिभित करने का व्यापक प्रयास और प्रजातंत्र का उपयोग हो रहा है। आतंकवाद सरीखे लोकतंत्र को लोक नियंत्रित करने और असमानता की दूरी को कम से कम करने की बड़ी अपेक्षा है।

(10) श्री वैद्यनाथ चौधरी, उन्नाव, बेगुसराय, बिहार।

मैं जो अनुभव करता हूँ उसे आपको लिख देता हूँ। ज्ञान तत्प में सर्वोदय वालों का आर.आर.एस. सम्बन्धी कार्य की प्राथमिकताओं आदि प्रश्नों को सटीक उत्तर आप दे रहे हैं। मुझे लगता है प्राप्त प्रश्नों में कुछ महत्वपूर्ण पश्नों को आधार बनाकर एक छोटी पुस्तक बना दें जिसका कुछ मूल्य रख दं। इससे लोगों को एक साथ विषय की साफ–साफ जानकारी हो जायगी। कई बार आपको प्रश्नकर्ता को लिखना–पड़ता है कि आपने ज्ञान तत्व को ध्यान नहीं ही पढ़ा, इसीलिये पुनः वैसा ही प्रश्न आपने किया है। पुस्तिका रहने से उसे पढ़ने का सुझाव दिया जा सकता है। आप जिस लगन और विश्वास से कार्य कर रहे हैं उसमें सफलता होनी है। स्थित प्रज्ञ होकर आप अपने विचार पर अटल है। आत्म विश्वास कभी निष्फल नहीं होता है। हाँ, अभी वक्त लगेगा। लोग वर्तमान से ऊब रहे हैं पर अभी राजनीति से पूर्णतः वितृष्णा नहीं हुई है। राजनेताओं ने भ्रमजाल फैला रखा है। उनके गिरफ्त में अभी लोग है।

प्रश्न (11) श्री रविन्द्र सिंह तोमर, गुना, मध्यप्रदेश।

ज्ञान तत्व पढ़ता हूँ। आपने प्रयत्नों का प्रशंसक हूँ अब तक पाठक प्रश्न करते हैं और आप उत्तर देत हैं। यदि आप प्रश्न करें और हम लोग उत्तर दें तो हो सकता है कि अधिक उपयोगी हो। मेरी सलाह है कि आप ज्ञान तत्व में प्रश्नोत्तर प्रणाली बदलें।

पिछली सदी की राजनीति पर विचार करें तो स्वतंत्रता के बाद गांधी जी के उत्तराधिकारी के रूप में नेहरू आये और जिन्ना पटल सावरकर सुभाष उने प्रतिद्वंद्वी रहें। जिन्ना और सावरकर साम्प्रदायिक तत्वों के चंगुल में चले गये। एक जुट ने समाजवाद शब्द का शोषण किया तो दूसरे गुट ने धर्म शब्द का। समाजवाद और धर्म शोषण के पयाय बन गये। समाजवाद के नाम पर भ्रष्टाचार और मूल्यहीन राजनीति का विस्तार हुआ ता धर्म के नाम पर समाज घृणा द्वेष और गृह युद्ध में फंस गया। आप संघ को बहुत ठीक मानते हैं। किन्तु मैं संघ को ठीक नहीं मानता।

उत्तरः— शिक्षक और विद्यार्थी या गुरू और शिष्य के बीच गुरू शिष्य को ज्ञान देता है, संवाद नहीं करता। इसके दो तरीके हैं (1) शिष्य प्रश्न करें गुरू उत्तर दें, (2) गुरू प्रश्न करें आर शिष्य उत्तर दें। दोनो ही तरीके शिष्य को समझाने के काम में लाये जाते हैं। ज्ञान तत्व गुरू शिष्य के बीच की ट्रेनिंग नहीं है बल्कि संवाद है। संवाद और प्रचार के बीच का अंतर समझना जरूरी हैं इसलिये मैं उन उद्दों पर बहस प्रारंभ करता हूँ जिन पर मेरी असहमति होती है। उक्त लेख है के बाद कुछ लोग प्रश्न करते हैं और कुछ लोग अपने विचार भेजते हैं। मैं ज्ञान तत्व में अन्य विद्वानों के विचारों पर पुनः अपना विचार लिखते हैं। कई

मुद्दों पर मेरी सोच साफ होती है और मैं चुप हो जाता हूँ और कई में वे लोग समझकर चुप हो जाते हैं। कुछ मुद्दे ऐसी भी होते हैं जिन पर दोनो ही तरह के लोग नहीं मानते वह चलता रहता है। उक्त संवाद की मैं धुरी हूँ और ज्ञान तत्व उसका माध्यम है। आप धुरी को किनारे करके मंथन की प्रक्रिया को जारी रखना चाहते हैं यह संभव नहीं। यह तो तभी संभव है जब ऐसी ही अन्य कई स्थानों से भिन्न–भिन्न लोग धुरी बनकर संवाद शुरू करें।

आपने स्वतंत्रता काल की राजनीति का सही चित्रण किया है। संघ के विषय में मेरे विचारों को आपने ठीक नहीं समझा। मैं न संघ को ठीक कहता हूँ न गलत। मं तो यह मानता हूँ कि गुण दोष के आधार पर संघ को अच्छा बुरा कहने की आदत डालनी चाहिये। जो लोग संघ को गलत समझते हैं उनमें मेरा नाम नहीं है क्योंकि संघ विरोध के नाम पर मुझे कोई संगठन चलाने की मजबूरी नहीं है। मैं संघ का समर्थन भी नहीं जो उसका चारण बना रहा हूँ। गुण दोष के आधार पर अपने नजर से जो देखता हूँ वैसा ही लिखता हूँ।

(12) श्री ओम प्रकाश दुबे, सदस्य ज्ञान यज्ञ मंडल, केन्द्रीय सलाहकर समिति, दिल्ली।

आपके विषय में ऐसी चर्चा होती है कि आप सुनते सबकी है किन्तु करते मन की हैं। आपके साथ रहते–रहते मुझे भो कभी–कभी ऐसा ही महसूस होता है। इस संबंध में आप स्वयं को कैसा मानते हैं।

उत्तरः— यह बात सच है कि किसी भी मामले में निर्णय करने के पूर्व मैं अपने सब साथियों के विचारों को धैर्य पूर्वक सुनता हूँ। यदि साथियो की सोच विपरीत हुई तो मैं अपनी सोच और साथियों की सोच को मिलाकर और अधिक विचार मंथन करता हूँ और तब निर्णय करता हूँ। यदि साथियों की सलाह से कोई महत्वपूर्ण नुकसान नहीं दिखता तो परीक्षण स्वरूप मान लेता हूँ अन्यथा यदि महत्वपूर्ण परिवर्तन की संभावना होती है तो मैं निष्कर्ष घोषित कर देता हूँ भले ही वह निष्कर्ष मेरे साथियों की सलाह के बिल्कुल विपरीत ही क्यों न हो। जिन मामलों में मुझे निर्णय लेने का अंतिम दायित्व दिया गया है उनमें मैं बिना किसी दबाव के स्वतंत्र रूप से निर्णय लेता हूँ। इस बात को ही कुछ लोग कहते हैं कि मैं सबकी सुनने के बाद भी स्वतंत्र निर्णय लेने का आदि हूँ। मैं इस प्रणाली को बिल्कुल ठीक समझता हूँ। निर्णय लेने की ढुलमुल नीति अंत में अहितकर ही होती है।

कभी–कभी निर्णय लेने में यदि मित्रों की गल्तियों के कारण विपरीत परिणाम आते हैं तो मुझे महसूस होता है कि मझसे भूल हुई जो मैने अपने निष्कर्ष को छोड़ दिया। इस संबंध में गांधी जी तो बहत दृढ़ थे। एक चुनाव में सुभाष बाबू के विजयी होने के बाद भी गांधी जी ने बहुमत के विरूद्ध अपना मत देकर वह निर्णय पलटवा दिया था। स्वतंत्रता आंदोलन में यदि गांधी जी इतने मजबूत न होकर सलाह पर निर्णय बदलते रहते तो भारत का स्वतंत्रता आंदोलन इस सीमा तक अहिंसक नहीं रह पाता। मैं तो ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझसे वह शक्ति प्रदान करे कि मैं उचित अनुचित के निर्णय पर स्वंय दृढ़ता से टिक सकूँ।

आप विचार करिये कि मैं अब तक जिल मुद्दों पर प्रारंभिक निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ वे सबके सब प्रचलित धारणाओं के विपरीत हैं। अभी के पूर्व जिन साथियों ने मेरा साथ दिया वे भी कई मुद्दों पर असहमत विचार रखते थे। धीरे–धीरे उन्हें विश्वास हुआ। कोई भी आंदोलन या कोई भी संघर्ष ढुलमुल निष्कर्ष प्रणाली से नहीं चल सकता। इसलिये निर्णय पद्धति के लिये गाँधी जी के समान दृढ़ चट्टान बनना आवश्यक है।

व्यवस्था परिवर्तन अभियान में सामूहिक निर्णय तय है। मुझे भी अधिकार नहीं कि मैं अन्तिम निर्णय कर सकूँ। अंतिम निर्णय सौं की राष्टोय कार्य समिति करेगी। यदि व्यवस्था परिवर्तन अभियान के निर्णयों में मेरी इच्छा के प्रतिकूल निर्णय होने

पर भी मुझे कभी कष्ट नहीं होता तो मेरे अन्य मामलों में यदि मैं स्वतंत्र निर्णय लूँ तो किसी अन्य को कोई कष्ट नहीं होना चाहिये। सब लोगों को अपने–अपने अधिकारों की सीमाएँ समझनी चाहिये और सीमाओं से बाहर के मामलों में दुख नहीं होना चाहिये। मेरा आपसे निवेदन है कि मैं गाँधी के समान दृढ़ निश्चयी बन सकूँ इसमें आप मेरी सहायकता करें।

प्रश्न (13) श्री रामकृष्ण पौराणिक, 187 वृन्दावन, गोपालगंज, सागर, मध्यप्रदेश।

ज्ञान तत्व निरंतर पढ़ता रहता हूँ। लिख नहीं पाता। डॉ0 प्रभु गुप्ता जी ने फोन करके ज्ञान तत्व पर विशेष चर्चा की इच्छा व्यक्त की तो मैं भी पत्र लिखने बैठ गया। ज्ञान तत्व के कुछ अंकों के आधार पर मैं निम्न नतीजे तक पहुँचा हूँ :–

(1) कृत्रिम ऊर्जा पर पहले स बहुत कर है। यदि और कर लगा तो मध्यम वर्ग को बहुत परेशानी होगी। जिन मकानों में ऊर्जा चलित बोंरिंग के अलावा पानी का कोई अन्य आधार नहीं वे विद्युत मूल्य वृद्धि के बाद पानी का कोई अन्य आधार नहीं वे विद्युत मूल्य वृद्धि के बाद पानी के लिये क्या करेंगे? ऊर्जा को आवश्यकता तो छोटे किसानों को भी है। उन्हें भी कठिनाई तो बहुत होगी।

(2) आपने सम्पूर्ण चल अचल सम्पत्ति पर दो प्रतिशत प्रतिवर्ष का सुझाव दिया। यह कर भी मध्यम समपत्ति वालों की कमर तोड़ देगा । उसे तो अपनी बेचनी पड़ सकती है। बहुत से लोगों के पास तो सिर्फ निवास योग्य मकान ही होता है। मेरा सुझाव है कि निवास योग्य मकान तथा सामान्य उपयोग की सम्पत्ति छोड़कर यह टैक्स लगाना उचित होगा।

(3) आपने संचालक और संचालिका शोर्षक से जो विचार दिया वह तो बहुत ही विचारणीय हैं इनका नाम संरक्षण और संरक्षित देना और भी अच्छा होगा। संचालक लगातार अपने अधिकार बढ़ाते जा रहे हैं। संरक्षक और संरक्षित वर्गो के बीच खाई इतनी

चौड़ी होती जा रही है कि कभी हिंसक संघर्ष भी फूट सकता है। संसद और विधानसभाओं को तो अधिकारों की ऐसी वृकोदरी भूख लगी है कि समाज के सारे अधिकार भी इनका पेट नहीं भर सकते । साम्यवादियों से कुछ उम्मीद थी किन्तु वे भी पूँजीवाद की पालकी ढ़ोने में लग गये हैं।

(4) ज्ञान तत्व अंक एक सौ पांच तो आपके सम्पूर्ण अभियान की ''गीता'' के समान है। एक–एक शब्द बहुत सार्थक और उपयोगी है। यह अंक पुस्तकाकार हो तो सबको पढ़ना चाहिये।

उत्तरः– मैने कृत्रिम ऊर्जा पर और सम्पत्ति पर कर लगाने को नहीं कहा बल्कि मैने तो कहा कि भारत के प्रत्येक नागरिक को चार सौ रूपया प्रतिमाह जीवन भत्ता और अनाज कपड़ा, दवा आदि सभी वस्तुओं पर लग रहे टैक्स हटाकर सम्पत्ति पर दो पतिशत तथा शेष राशि कृत्रिम ऊर्जा से ले ली जावे। आपने मकान छोड़ने की बात की है। एक परिवार को एक वर्ष में पचीस रूपया नगद मिलेगा। इसका अर्थ हुआ कि एक परिवार को साढ़े बारह लाख रूपया की सम्पत्ति तक तो कोई टैक्स नहीं लगेगा। साढ़े बारह लाख से ऊपर वालों का टैक्स देना होगा और कम वालों को जीवन भत्ता मिलेगा। इस तरह सामान्य व्यक्ति को मिलेगा अधिक और लगेगा कम।

कृत्रिम ऊर्जा का भी वैसा ही है। अनाज, कपड़ा, दवा, साइकिल तथा अन्य अनेक प्रकार की आवश्यक वस्तुओं पर से टैक्स हटाकर, कृत्रिम ऊर्जा पर लगा रहे हैं। कृत्रिम ऊर्जा पर टैक्स लगने से कोई चीज मंहगी नहीं होगी क्योंकि उस वस्तु पर पहले से ही बहुत कर है।

पूरे भारत की आबादी के तीन बराबर भाग कर दें (1) निम्न वर्ग (2) मध्यम वर्ग (3) उच्च वर्ग जो वस्तुएँ निम्न वर्ग ज्यादा उपयोग करे उच्च वर्ग कम उसे मूल आवश्यकता की श्रेणी में रखियें। जो वस्तु मध्यम वर्ग अधिक उपयोग करे, उच्च तथा निम्न कम उसे सुविधा की वस्तु में रखिये और जो वस्तु उच्च वर्ग अधिक उपयोग करे निम्न कम उसे विलासित मे रखना चाहिये। मैं चाहता हूँ कि मूल आवश्यक उपभोग की वस्तुएँ कर मुक्त हों। इसी तरह मेरी इच्छा है कि श्रम उत्पादित सभी वस्तुएँ भी पूरी तरह कर मुक्त हों।

(14) श्री राधाकृष्ण गेरा, अशोक विहार, दिल्ली।

ज्ञान तत्व अंक एक सौ तेरह पढ़ा। मुझे महसूस हुआ कि सपने देखने में आपको आनंद आता है तभी तो आप ऐसे मुंगेरी लाल के सपने देख रहे हैं जो कभी पूरी हो हो नहीं सकते। यदि आप इन्हें पूरे भी करने का प्रयत्न करेंगे तो परिणाम कुछ नहीं होगा। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि वह आपके सपने पूर्ण करें।

उत्तरः– आपको इपने जीवन में मुंगेरी लाल सरीखे सपने देखने वालों से ही भेंट हो पाई, गाँधी सरीखों से नहीं इसमं मैं क्या कर सकता हूँ। आपने मेरे सपने पूर्ण करने के लिये ईश्वर से प्रार्थना की इससे मुझे खुशी हुई है। आपकी प्रार्थना ईश्वर अवश्य सुनेगा। यदि आपने दिल से प्रार्थना की होगी।

(15) डॉ0 ताराचन्द्र, हालु बाजार, भिवानी, हरियाणा।

ज्ञान तत्व अंक एक सौ चौदह मिला। आपका उत्तर पढ़कर प्रसन्नता हुई मैं हँसे बिना न रह सका। पंजाब में एक कहावत है– ''नेकी कर, खू, चपा! मुड़ के बाहर आवे नां, फिर नेकी करवावे नाँ।'' सरकारों और सरकारी योजनाओं की तुलना करने से न तो भूखों का खाली पेट भरता है, न ही अंग्रेजी के गुलामां द्वारा अंग्रेंजों द्वारा चलाई गई परिपाटी का पालन बंद होगा। जहाँ तक रोजगार गारन्टी का प्रश्न है, हमने अपने वर्तमान संविधान की धारा 19 में दी है, धारा 23 में शोषण व बेगार बंद की भी गारन्टी दी हैं। साथ में धारा 13 में यह भी गारन्टी दी है कि इसके विरूद्ध नया पुराना न कोई कानून है और न ही होगा। अर्थात् व्यक्ति अपनी क्षमतानुसार जो कुछ भी करेगा, उसके प्रतिदान स्वरूप वह जीवनयापन का खर्च प्राप्त करेगा। अतः गारन्टी तो 100 प्रतिशत रोजगार की, आरामदायक जीवनयापन के श्रम मूल्य दी गई है। प्रतिवर्ष इसके पालन की शपथ लेकर भी कोई भी सरकार या सरकारी अधिकारी और उनके पिट्ठू पालन करते न हीं दिखे। 50 वर्ष बीतने पर भी इस ओर सामान्य आदमी का ध्यान नहीं है। नेता लोग अपनी ढपली लेकर अधिकार माँगने का पाठ पढ़ाते है। यह तत्थ है कि अधिकार माँगने से मिलने नहीं, चले जाते हैं। अनेक सामाजिक संस्थाएँ है, जो चेतना जगाने के बहाने चेतना भटका रही है। आपके विचारों से हम यहाँ तक सहमत हैं कि ढाँचा खराब है, किन्तु यह आज की जरूरत पूरी करने लायक 10 वर्ष में भी आपकी योजना के अनुसार काम कर लेगा, हमें विश्वास नहीं होता– काम उन नौकरों का ही करना है जो वर्तमान मनोरोगियों के उत्तराधिकारी व विरासत में रोग लिये होंगे। कामना हैं आप सफल हों।